रसायन शास्त्र में क्रांति का ज़माना

डॉ. सुशील जोशी

विज्ञान के इतिहासकार इस बात पर लगभग एकमत हैं कि वैज्ञानिक क्रांति का आगाज़ गैलीलियो के साथ 16वीं सदी में हुआ था और यह न्यूटन के साथ 17वीं सदी में परवान चढ़ी थी। मगर इस क्रांति का सम्बंध मुख्यतः विज्ञान की उस शाखा से है जिसे आज हम भौतिक शास्त्र कहते हैं। इस क्रांति की पदचाप रसायन शास्त्र में हमें अट्ठारवीं सदी के उत्तरार्ध में सुनाई पड़ती है। इसके मुख्य किरदार थे जोसेफ प्रिस्टले, कार्ल शीले, कैवेन्डिश, जोसेफ लुई प्राउस्ट, क्लाउड बर्थोलेट, एन्तोन लेवॉज़िए, जॉन डाल्टन, जोसेफ गैलूसेक, बर्ज़ीलियस, अमीडियो एवोगेड्रो वगैरह। इनमें से प्राउस्ट और बर्थोलेट के बीच चली बहस ने उस दौर में रसायन शास्त्र को एक नई दिशा देने में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया था। यहां मैं न सिर्फ उस बहस की बल्कि इन दो वैज्ञानिकों के योगदान की भी चर्चा करूंगा।

रसायन शास्त्र को दिशा देने वाली यह बहस करीब 1775 से 1797 के बीच ज़ोर-शोर से चली थी। जोसेफ लुईस प्राउस्ट का मत था कि सारे शुद्ध यौगिकों में पाए जाने वाले तत्वों का अनुपात सदैव निश्चित होता है। दूसरी ओर, क्लॉड बर्थोलेट का मत था कि यौगिकों में तत्वों का प्रतिशत अलग-अलग होता है और यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस यौगिक को बनाते समय विभिन्न तत्वों की कितनी-कितनी मात्रा ली गई थी। आज के संदर्भ में यह बहस बहुत मामूली लगती है और लगता है कि इसका समाधान करना बहुत ही आसान था, आपको बस इतना करना होगा कि एक ही यौगिक को अलग-अलग स्रोतों से प्राप्त करें, या अलग-अलग विधियों से बनाएं और उनमें विभिन्न तत्वों का प्रतिशत निकाल लें।

मगर क्या यह इतना ही आसान था? इस सवाल का जवाब पाने के लिए हमें थोड़ा ध्यान उस समय की परिस्थिति पर देना होगा। सबसे पहले तो बात आती है कि यदि आप किसी पदार्थ का विश्लेषण करना चाहते हैं, तो वह पदार्थ शुद्ध रूप में प्राप्त करना होगा। आपके पास पदार्थों के शुद्धिकरण की बहुत नफीस विधियां उपलब्ध नहीं थीं उस समय। लिहाज़ा आप जिस पदार्थ का विश्लेषण करेंगे, उसमें अशुद्धियों के कारण त्रुटियां आने की संभावना रहेगी।

दूसरी समस्या यह थी कि रसायन शास्त्र में पदार्थों व उनकी अभिक्रियाओं के अध्ययन में माप-तौल की बात अभी शुरू ही हुई थी। इस वजह से वज़न तौलने के बहुत बढ़िया उपकरण भी उपलब्ध नहीं थे। आज साधारण स्कूलों में ऐसी तुला उपलब्ध होती है जिससे 1 ग्राम का 10 हज़ारवां भाग नापा जा सकता है। तो उस समय की परिस्थितियों में आप अपेक्षा कर सकते हैं कि मापन में थोड़ी-बहुत घट-बढ़ होगी।

तीसरी बात यह थी कि उस समय तक यौगिक और मिश्रण के बीच अंतर भी स्पष्ट नहीं था। आज हम जानते हैं कि जब तत्व जुड़कर यौगिक बनाते हैं तो उनके बीच रासायनिक बंधन बनते हैं जबकि सिर्फ मिश्रण बनने

पर दो या दो से अधिक पदार्थों के कण एक-दूसरे में बिखर जाते हैं, जुड़ते नहीं हैं। उस समय रसायन शास्त्री तत्व और मिश्रित (मिक्स्ड) पदार्थों की ही बात करते थे। तत्व की परिभाषा भी धीरे-धीरे स्पष्ट हो रही थी और अंततः एन्तोन लेवॉज़िए ने तत्वों की एक कामकाजी परिभाषा देकर रसायन शास्त्र को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इन सारे तथ्यों के मद्दे नज़र बर्थोलेट ने जिन 'यौगिकों' के विश्लेषण किए, उनसे वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि यदि दो तत्व लिए जाएं तो वे अलग-अलग अनुपात में क्रिया करके यौगिक बना सकते हैं। दरअसल बर्थोलेट ने इसे रासायनिक आकर्षण का नियम कहा था। प्राउस्ट ने इस चुनौती को स्वीकार किया और कई प्रयोग किए। कई वर्षों तक चले इन प्रयोगों के बाद प्राउस्ट ने अपनी परिकल्पना 1794 में प्रकाशित की थी जिसे उन्होंने स्थिर अनुपात का नियम कहा था, और आगे चलकर इसका नाम निश्चित अनुपात का नियम हुआ। यह नियम रसायन शास्त्र के किसी भी विद्यार्थी को पता होगा। तो वे कौन-से प्रयोग थे जो प्राउस्ट ने किए थे? उन प्रयोगों का ज़िक्र करने से पहले यह बताना मुनासिब है कि उस समय अधिकांश रसायनज्ञ बर्थोलेट से ज़्यादा सहमत थे।

प्राउस्ट के सबसे प्रसिद्ध प्रयोग कॉपर कार्बोनेट के साथ किए गए थे। उन्होंने कई विधियों से कॉपर कार्बोनेट को बनाया और अलग-अलग जगह के खनिजों से प्राप्त कॉपर कार्बोनेट का शोधन करके विश्लेषण किया। हर नमूने में वे कॉपर (तांबा), कार्बन और ऑक्सीजन की प्रतिशत मात्रा नापते थे। इसी प्रकार से उन्होंने यह भी देखा कि लोहा और ऑक्सीजन दो अलग-अलग अनुपातों में क्रिया करते हैं - एक ऑक्साइड में 27 प्रतिशत ऑक्सीजन होती है तथा दूसरे ऑक्साइड में 48 प्रतिशत। मगर जो खास बात उन्होंने नोट की, वह यह थी कि लौह ऑक्साइड में या तो 27 प्रतिशत ऑक्सीजन होगी या 48 प्रतिशत, इनके बीच के प्रतिशत नहीं पाए जाते। उन्होंने यह भी देखा कि तांबे और ऑक्सीजन की क्रिया से बनने वाले यौगिक में या तो 18 प्रतिशत ऑक्सीजन होती है या 25 प्रतिशत मगर इनके बीच के मान नहीं पाए जाते। इसी तरह के परिणाम उन्हें अन्य यौगिकों के मामले में भी मिले। जैसे उन्होंने टिन के दो ऑक्साइड्स और लोहे के दो सल्फाइड्स के विश्लेषण भी किए थे और इसी प्रकार के परिणाम प्राप्त किए थे।

अंततः प्राउस्ट यह दर्शाने में सफल रहे कि बर्थोलेट ने जिन अभिकारकों का उपयोग किया था, वे अशुद्ध थे और 1794 में उन्होंने अपना नियम इन शब्दों में व्यक्त किया था:

"इन प्रयोगों के आधार पर मैं निष्कर्ष निकालूंगा कि कई अन्य धातुओं की तरह लोहा भी प्रकृति के उन नियमों के अधीन है जो हर सच्चे संयोजन पर लागू होता है अर्थात वह ऑक्सीजन के दो अलग-अलग मगर स्थिर अनुपातों के साथ जुड़ता है। इस मामले में वह टिन, पारे और सीसे, या दूसरे शब्दों में किसी भी अन्य ज्वलनशील पदार्थ से भिन्न नहीं है।"

यहां एक मज़ेदार बात का ज़िक्र किया जा सकता है। प्राउस्ट ने उस समय के हिसाब से बहुत परिष्कृत तकनीकों की मदद ली थी। विडंबना यह है कि यदि वे इससे ज़्यादा परिष्कृत तकनीकों के चक्कर में पड़ते तो शायद स्थिर अनुपात के नियम तक पहुंचना मुश्किल होता। अलबत्ता, इसकी बात लेख के अंत में करते हैं।

वैसे तो हमारी पाठ्य पुस्तकों में यह भी नहीं बताया जाता कि स्थिर अनुपात को लेकर कोई बहस-मतभेद वगैरह थे। विद्यार्थियों को यही पता चलता है कि प्राउस्ट ने 1794 में स्थिर अनुपात का नियम प्रतिपादित किया। इस प्रतिपादन की प्रक्रिया एक रहस्य ही बनी रहती है। यदि किसी किताब में यह बात बताई जाती है कि बर्थोलेट बदलते अनुपात की बात मानते थे, तो उसका अर्थ ऐसा निकलता है कि 'देखो, बर्थोलेट कितनी गलत बात मानते थे और कैसे प्राउस्ट ने उन्हें गलत साबित करके सही बात बताई।' लेकिन यह विज्ञान के इतिहास को देखने का सही तरीका नहीं है। उस समय उपलब्ध तकनीकों, विचारों, मान्यताओं वगैरह के तहत ही इन बातों को देखना होगा, अन्यथा हम आज की अपनी धारणाओं के

आधार पर गलत-सही के फैसले करते रहेंगे, जो शायद अन्याय होगा।

इस बात को समझने के लिए थोड़ी चर्चा इस बात की हो जाए कि इन दोनों वैज्ञानिकों के अन्य योगदान क्या थे। जैसे पहले बर्थोलेट की बात करें।

बर्थोलेट (1748-1822) का जन्म फ्रांस में हुआ था और उन्होंने चिकित्सा की पढ़ाई इटली में की थी। जब वे पैरिस लौटे तो उनकी चिकित्सा की इतालवी उपाधि अमान्य थी और उन्हें फिर से उपाधि प्राप्त करना पड़ी। पैरिस में उन्होंने महत्वपूर्ण काम यह किया कि रसायन शास्त्र के अनुसंधान को प्रकाशित करने लगे और 1778 में उन्हें फ्रेंच एकेडमी का सदस्य चुना गया।

बर्थोलेट वे पहले फ्रांसिसी रसायनज्ञ थे जिन्होंने एन्तोन लेवॉज़िए द्वारा प्रस्तुत रसायन की नवीन प्रणाली को स्वीकार किया था। इस नई प्रणाली में तत्वों और योगिकों के बीच स्पष्ट भेद किया गया था और यौगिकों के नामकरण की एक नई व्यवस्था दी गई थी। वास्तव में रासायनिक नामकरण की इस प्रणाली को आगे बढ़ाने व स्थापित करने में बर्थोलेट का अहम योगदान रहा था। आज भी रसायन शास्त्र में कमोबेश इसी प्रणाली का उपयोग किया जाता है।

बर्थोलेट का पहला महत्वपूर्ण प्रकाशन क्लोरीन के बारे में था। दिक्कत यह थी कि उन्होंने लेवॉज़िए के इस गलत निष्कर्ष को मान लिया था कि क्लोरीन एक तत्व नहीं बल्कि यौगिक है और इसमें ऑक्सीजन होती है। क्लोरीन को तत्व के रूप में स्थापित करने का काम एक अन्य प्रसिद्ध वैज्ञानिक हम्फ्री डेवी ने किया था। वैसे विरंजक (ब्लीच) के रूप में क्लोरीन का इस्तेमाल बर्थोलेट की ही देन है।

बहरहाल, बर्थोलेट लेवॉज़िए की इस बात को लेकर आश्वस्त नहीं थे कि सारे अम्लों में ऑक्सीजन होगी। लेवॉज़िए का मत था कि अम्लों का अम्लीय गुण उनमें उपस्थित ऑक्सीजन के कारण होता है। इस संदर्भ में बर्थोलेट ने हाइड्रोजन सायनाइड (प्रुसिक एसिड) और हाइड्रोजन सल्फाइड का विश्लेषण करके दर्शाया था कि इनमें ऑक्सीजन नहीं है, हालांकि ये अम्लीय हैं।

बर्थोलेट ने अमोनिया का तात्विक संगठन पता किया, पोटेशियम क्लोरेट की खोज की। मगर उनका सबसे महत्वपूर्ण (उपयोगी) अनुसंधान लोहे और स्टील के विश्लेषण से सम्बंधित था, जिसके परिणामस्वरूप हमें बेहतर गुणवत्ता का स्टील प्राप्त हुआ।

1789 में फ्रांसिसी क्रांति के बाद बर्थोलेट को कई आयोगों का सदस्य और राष्ट्रीय टकसाल का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। 1798 में नेपोलियन ने उन्हें एक संस्थान की स्थापना के लिए मिस्र भेजा। फ्रांस लौटकर बर्थोलेट ने पैरिस के एक उपनगर में एक प्रयोगशाला स्थापित की जिसने धीरे-धीरे एक सोसायटी का रूप ले लिया।

1803 में बर्थोलेट ने अपने इतने वर्षों के अनुसंधान के निचोड़ एक पुस्तक *एसाई डी स्टेटीक किमिक* में प्रकाशित किए जिसमें उन्होंने अनिश्चित अनुपात का सिद्धांत प्रस्तुत किया था।

बर्थोलेट का एक महत्वपूर्ण योगदान उत्क्रमणीय क्रियाओं को पहचानना था। ये ऐसी क्रियाएं होती हैं जो एक ही समय पर दोनों दिशाओं में चल सकती हैं यानी अभिकारक क्रिया करके उत्पाद बनाएंगे और साथ ही उत्पादों की क्रिया से वापिस अभिकारक बन जाएंगे। वैसे प्राउस्ट, डाल्टन, बर्ज़ीलियस वगैरह के काम ने उनका यह सिद्धांत ज़रूर गलत साबित कर दिया था कि किसी पदार्थ में तत्वों का प्रतिशत इस बात पर निर्भर करता है कि उसे बनाने के लिए अभिकारकों की कितनी-कितनी मात्रा ली गई थी मगर एक अलग रूप में यह सिद्धांत आज भी जीवित है कि रासायनिक क्रियाओं, खासकर उत्क्रमणीय क्रियाओं की गति अभिकारकों की मात्रा पर निर्भर करती है। इसे संहति क्रिया (मास एक्शन) का नियम कहते हैं।

अब प्राउस्ट (1754-1826) पर आते हैं। प्राउस्ट भी फ्रांसिसी थे और उन्होंने अपने पिता से ही रसायन शास्त्र की शिक्षा ली थी। बाद में वे लड़-झगड़कर पैरिस आ गए और वहां से स्पैन चले गए। स्पैन में वे काफी प्रतिष्ठित

संस्थाओं में रसायन शास्त्र पढ़ाते थे। मगर फ्रांसिसी क्रांति के बाद जब नेपोलियन ने स्पैन पर आक्रमण कर दिया तो स्पैन में प्राउस्ट की प्रयोगशाला को जला दिया गया था और उन्हें फ्रांस लौटने पर मजबूर किया गया था।

वैसे तो प्राउस्ट का प्रमुख काम बर्थोलेट को गलत साबित करना ही कहा जा सकता है। इसके अलावा प्राउस्ट की रुचि शक्कर में थी। वे अलग-अलग स्रोतों से प्राप्त शक्कर का विश्लेषण करते थे। उन्होंने ही यह बताया था कि अंगूर से प्राप्त शक्कर ग्लूकोज़ होती है। कुल मिलाकर उन्होंने तीन प्रकार की शर्कराओं की खोज की थी।

प्राउस्ट द्वारा स्थिर अनुपात का नियम 1794 में प्रकाशित किया गया था मगर इसे मान्यता मिली जाकर 1811 में जब बर्ज़ीलियस ने इसका श्रेय उन्हें दिया। ऐसा कहते हैं कि डाल्टन ने अपना परमाणु सिद्धांत रासायनिक संयोगों के नियमों की व्याख्या के लिए विकसित किया था। इस बारे में थोड़ी अस्पष्टता है कि परमाणु सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए डाल्टन प्राउस्ट से प्रभावित थे या नहीं मगर इतना निश्चित है कि यह नियम परमाणु सिद्धांत के पक्ष में एक प्रमाण था और यह भी निश्चित है कि परमाणु सिद्धांत से स्थिर अनुपात के नियम की व्याख्या हुई थी।

मगर अब सवाल यह है कि यदि बर्थोलेट और प्राउस्ट की बहस 20-30 साल बाद होती तो क्या निष्कर्ष वही निकलता। जैसे लोहे के ऑक्साइड्स को ही लें। लोहे के दो ऑक्साइड होते हैं। प्राउस्ट ने दर्शाया था कि एक में 27 प्रतिशत ऑक्सीजन और 73 प्रतिशत लोहा होता है और हमेशा अनुपात यही रहता है। यदि थोड़े और नफीस उपकरण होते तो शायद पता चलता कि यह प्रतिशत एक सीमा के अंदर बदलता रहता है। जैसे लोहे के प्रथम ऑक्साइड में ऑक्सीजन की मात्रा 23 से 25 प्रतिशत के बीच बदलती है। उस समय उपलब्ध उपकरणों के साथ प्राउस्ट इतने कम अंतर को पकड़ पाने में असमर्थ थे।

आज ऐसे कई यौगिक ज्ञात हैं जिनमें तत्वों का प्रतिशत सदा स्थिर नहीं रहता। रसायन शास्त्री इन्हें गैर-आनुपातिक यौगिक या गैर-स्टाइकियोमेट्रिक यौगिक कहते हैं। बर्थोलेट के सम्मान में इन्हें बर्थोलाइड भी कहा जाता है। जैसे लोहे के उक्त ऑक्साइड के एक अणु में आदर्श रूप में तो लोहे और ऑक्सीजन की निश्चित मात्राएं होनी चाहिए मगर वास्तविकता में ऐसा नहीं है। परिणाम यह होता है कि इसका सूत्र FeO न होकर $Fe_{0.83}O$ से लेकर $Fe_{0.95}O$ तक निकलता है। आज ऐसे ढेरों यौगिक पता हैं। रसायन के विद्यार्थियों को इस तरह के आणविक सूत्र पढ़ने की आदत नहीं होती।

प्राउस्ट को एक और समस्या का सामना नहीं करना पड़ा था। उस समय कार्बनिक रसायन शास्त्र का बहुत विकास नहीं हुआ था। यदि हुआ होता तो बात बहुत अलग होती। कार्बन और हाइड्रोजन को ही लें, तो ये दो तत्व इतने अलग-अलग अनुपातों में क्रिया कर सकते हैं और करते हैं कि दिमाग चकरा जाए। यदि कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन ले लें, तो स्थिति विकट हो जाएगी। स्थिति सचमुच इतनी विकट है कि हमें कार्बन के यौगिकों के अध्ययन के लिए रसायन शास्त्र की एक पूरी शाखा ही खोलनी पड़ी है। अलबत्ता वह हमारा विषय अभी नहीं है।

बहस पर लौटें। आम तौर पर इसे इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि प्राउस्ट जीत गए, बर्थोलेट हार गए और हाशिए पर खिसक गए। मगर उपरोक्त विवरण से एक बात तो यह स्पष्ट दिखती है कि बर्थोलेट एक मत का समर्थन कर रहे थे, और उनका मत उनके प्रयोगों के परिणामों पर आधारित था। दूसरी बात यह थी कि वे अन्य कई मामलों में ज़बर्दस्त योगदान दे रहे थे। जैसे रासायनिक नामकरण के क्षेत्र में। तीसरी बात यह है कि विज्ञान की तरक्की एक सरल रेखा में देखने की हमारी प्रवृत्ति उचित नहीं है। यह ठीक नहीं है कि हम इतिहास की सिर्फ उन्हीं बातों को देखें जो आज की हमारी धारणाओं या सिद्धांतों तक पहुंचें। ऐसा करके हम विज्ञान की वास्तविक प्रकृति को अनदेखा कर देते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***